कविता

स्कूल से आते हुए, बस्ते में मैंने*

गुलज़ार

स्कूल से आते हुए, बस्ते में मैंने
आम पापड़ की तरह ही तोड़कर
एक टुकड़ा आसमां का रख लिया था।

वो मेरे रंगीन शीशों के खज़ाने में
गुम भी हो जाता था अक्सर...
मैं अँधेरे में टिमकते जुगनुओं से ढूँढ़ लेता था
वो मेरे साथ रहने लग गया था...
एक टुकड़ा आसमां का।

घिर के आ जाते थे जब बादल
भीग जाती थीं किताबें मेरे बस्ते में
धूप में जब पीठ जलने लगती तो
बस्ता टिकाकर नीम के नीचे
हवा देता था उस को
शोर करते थे परिंदे मेरे बस्ते में
तो सब टीचर मेरे नाराज़ होते थे!
मैं बाहर रख के आ जाता था बस्ता...

टाँग आता था गिलहरी वाले शीशम पर
या कभी अम्मा के छाबे पर
जो गुड़ के सेव देती थी।
किताबें तो बड़ी होती गईं सारी...
वज़न बढ़ता गया उनका
मेरा बस्ता पुराना हो रहा था...
फट रहा था
न जाने कब, कहाँ पर गिर पड़ा टुकड़ा
वो मेरा आसमां का।

मैं नंगे पाँव चलता हूँ तो पैरों में
बहुत चुभती हैं किरचें आसमां की
वो चूरा हो गया है!!

---

* एकलव्य, भोपाल द्वारा प्रकाशित पत्रिका *चकमक* (नवंबर 2007) से साभार